स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः ।
नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥

भागवत-पत्रिका

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक ।
भक्ति अधोक्षज की अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥

सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर ।
किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो श्रम व्यर्थ सभी केवल बंधनकर ॥

वर्ष १६ | गौराब्द ४८४, मास—माधव ३, वार—कारणोदशायी, वृहस्पतिवार, २९ पौष, सम्वत् २०२७, १४ जनवरी १९७० | संख्या ८

जनवरी १९७१

श्रीमद्भागवतीय श्रीकृष्णस्तोत्राणि

श्रीब्रह्मणा कृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम्

(श्रीमद्भागवत १०।१४।१—४०)

(गताङ्क, पृष्ठ १३९ से आगे)

को वेत्ति भूमन् भगवन् परात्मन् योगेश्वरोतीर्भवतस्त्रिलोक्याम् ।
क्व वा कथं वा कति वा कदेति विस्तारयन् क्रीडसि योगमायाम् ॥२१॥

हे भूमन् ! हे परमात्मन् ! हे योगेश्वर ! आप अपनी योगमायाका विस्तार कर किस समयमें, कहाँ, कितने प्रकारसे और किस रूपमें क्रीड़ा करते हैं, अहो ! आपकी उन सभी लीलाओंको इस त्रिभुवनके बीचमें कौन व्यक्ति जाननेमें समर्थ हो सकता है ? ॥ २१ ॥

तस्माविदं जगदशेषमसत्स्वरूपं स्वप्नाभमस्तधिषणं पुरुदुःखदुःखम् ।
त्वय्येव नित्यसुखबोधतनावनन्ते मायात उद्यदपि यत् सदिवावभाति ॥२२॥

यह निखिल जगत् अनित्य है । इसलिए स्वप्नकी तरह अचिरस्थायी है । ज्ञानशून्य जड़ और अत्यन्त दुःखदायी है । आप सच्चिदानन्दस्वरूप अनन्त हैं । आपमें आश्रित अचिन्त्य शक्तिसे इसकी उत्पत्ति होती है और विनाश होता है । फिर भी यह सत्यकी तरह प्रतीत हो रहा है ॥ २२ ॥

एकस्त्वमात्मा पुरुषः पुराणः सत्यः स्वयंज्योतिरनन्त आद्यः ।
नित्योऽक्षरोऽजस्रसुखो निरञ्जनः पूर्णोऽद्वयो मुक्त उपाधितोऽमृतः ॥२३॥

आप ही एकमात्र सत्य हैं, क्योंकि आप परमात्मा हैं और इस परिदृश्यमान जगतसे भिन्न हैं । आप जगतके जन्मादि कार्योंके मूल कारण, पुराण पुरुष और सनातन हैं । आप पूर्ण नित्यानन्दमय, कूटस्थ, अमृतस्वरूप एवं उपाधिमुक्त हैं, निरञ्जन अर्थात् मायिक गुण शून्य हैं, विशुद्ध और अनन्त अर्थात् अपरिच्छिन्न और अद्वय हैं ॥ २३ ॥

एवंविधं त्वां सकलात्मनामपि स्वात्मानमात्मात्मतया विचक्षते ।
गुर्वर्कलब्धोपनिषत्सुचक्षुषा ये ते तरन्तीव भवानृताम्बुधिम् ॥२४॥

जो सभी महाजन गुरुरूपी सूर्यसे ज्ञानरूप चक्षु प्राप्त कर सभी जीवोंके आत्मस्वरूप आपको परमात्मा रूपसे दर्शन करते हैं, वे 'अहं ममादि' मिथ्याभिमानरूप भवसमुद्रसे उत्तीर्ण होते हैं ॥ २४ ॥

आत्मानमेवात्मतयाविजानतां तेनैव जातं निखिलं प्रपञ्चितम् ।
ज्ञानेन भूयोऽपि च तत् प्रलीयते रज्ज्वामहेर्भोगभवाभवौ यथा ॥२५॥

जिस प्रकार अज्ञानसे ही रस्सीमें सर्पकी प्रतीति होती है, और ज्ञानोदय होने पर वह भ्रम दूर हो जाता है, उसी प्रकार परमात्मस्वरूप आपको ज्ञानानन्दस्वरूपके रूपमें जो लोग नहीं जानते, उन्हें अज्ञान द्वारा उत्पन्न संसार होता है । ज्ञानोदय होने पर वह विनष्ट हो जाता है ॥ २५ ॥

अज्ञान संज्ञौ भवबन्धमोक्षौ द्वौ नाम नान्यौ स्त ऋतज्ञभावात् ।
अजस्रचित्यात्मनि केवले परे विचार्यमाणे तरणाविवाहिनी ॥ २६ ॥

भवबन्ध और मोक्ष—ये दोनों ही बातें अज्ञान द्वारा उत्पन्न हैं, इसलिए सत्य ज्ञानसे भिन्न हैं । विचार करने पर जाना जा सकता है कि सूर्यमें जिस प्रकार दिन और रात का अस्तित्व नहीं है, उसी प्रकार माया सम्बन्धशून्य अखण्ड-अनुभव-स्वरूप आत्मतत्त्वमें इन दोनोंका (बन्धन और मोक्ष का) अधिष्ठान नहीं है अर्थात् अनात्म धारणासे ही इन दोनोंकी उत्पत्ति है, आत्मतत्त्व सम्बन्धमें वह मिथ्या है ॥ २६ ॥

त्वामात्मानं परं मत्वा परमात्मानमेव च ।

आत्मा पुनर्बहिर्मृग्य अहोऽज्ञजनताज्ञता ॥२७॥

अज्ञ व्यक्ति आत्मस्वरूप आपको अनात्म अर्थात् आपके श्रीविग्रहको मायिक देह एवं आपसे भिन्न अनात्म वस्तुको परमात्मा समझकर आपके पादपद्मोंका परित्याग कर पुनः अन्यत्र बहिर्विषयोंमें आत्मतत्त्वरूप आपका अनुसन्धान करते हैं। अहो ! उनकी क्या मूर्खता है (अथवा) अज्ञव्यक्ति परमात्मस्वरूप आपको ही शुद्ध जीवस्वरूप समझकर पुनः आत्मतत्त्व अन्यत्र अन्वेषणीय है, ऐसी कल्पना करते हैं। अहो ! उनकी क्या मूर्खता है ! ॥ २७ ॥

अन्तर्भवेऽनन्त भवन्तमेव ह्यतत्त्यजन्तो मृगयन्ति सन्तः ।

असन्तमप्यन्त्यहिमन्तरेण सन्तं गुणं तं किमु यन्ति सन्तः ॥२८॥

असत्यभूत सर्पबुद्धि परित्याग न करनेसे क्या रज्जुबुद्धि अर्थात् यथार्थ ज्ञान होता है ? इसलिए हे अनन्त ! साधु लोग जड़विषय त्याग कर हृदयके मध्यमें आपका अन्वेषण करते रहते हैं ॥ २८ ॥

अथापि ते देव पदाम्बुजद्वयप्रसादलेशानुगृहीत एव हि ।

जानाति तत्त्वं भगवन् महिम्नो न चान्य एकोऽपि चिरं विचिन्वन् ॥२९॥

हे देव ! हे भगवन् ! जो व्यक्ति आपके पादपद्म युगलकी करुणा-कणा मात्र भी प्राप्त किए हैं, एकमात्र वे ही आपके यथार्थ माहात्म्यको जानते हैं। उनको छोड़कर दीर्घकाल तक अनुसन्धान करके भी और कोई व्यक्ति उसे जान नहीं सकता ॥ २९ ॥

तदस्तु मे नाथ स भूरिभागो भवेऽत्र वान्यत्र तु वा तिरश्चाम् ।

येनाहमेकोऽपि भवज्जनानां भूत्वा निषेवे तव पादपल्लवम् ॥३०॥

हे नाथ ! अतएव इस ब्रह्म जन्म में ही हो, या पशुपक्षी आदि जन्ममें ही हो, जिससे मैं आपके भक्तोंमें अन्यतम रूपसे जन्मग्रहण कर आपके पादपद्मोंकी सेवा कर सकूँ—मुझे ऐसा सौभाग्य प्राप्त हो ॥ ३० ॥

(क्रमशः)

श्रीकृष्णकी शोभा

तरु तमाल तरैं त्रिभंगी कान्ह, कुँवर ठाढ़े हैं साँवरे सुबरन ।
मोर मुकुट, पीताम्बर बनमाला, राजत उर व्रज जन मन हरन ॥
सखा-अंसु पैर भुज दीन्हें, लीन्हें मुरली अधर मधुर बिम्ब भरन ।
सूरदास कमल नैन को न किए विलोकि गोबरधन धरन ॥

श्रीचैतन्य महाप्रभुकी अमन्दोदया दया

नमो महावदान्याय कृष्णप्रेमप्रदाय ते ।
कृष्णाय कृष्णचैतन्यनाम्ने गौरत्विषे नमः ॥

सभी दाताओंके मध्य जो सर्वश्रेष्ठ दाता हैं, जो प्रपञ्चमें अवतीर्ण होकर कृष्णप्रेम प्रदान-लीला प्रकट किये थे, जो साक्षात् कृष्ण हैं, जिनका नाम श्रीकृष्णचैतन्य एवं रूप गौरवर्ण है, उनको मैं प्रणाम करता हूँ। श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभुमें सर्वोत्तम दान-शीलता है और वे प्रेममय विग्रह हैं।

जड़ शब्दिक व्यक्ति सोचते हैं कि 'कृष्ण' शब्द अन्यान्य शब्दोंकी तरह एक आभिधानिक शब्दविशेष है । किन्तु श्रीकृष्ण उनकी इस प्रकारकी अक्षज धारणाके अतीत अधोक्षज वस्तु हैं। जिस किसी विषयमे पूर्णज्ञान प्राप्त करनेके लिए नाम, रूप, गुण और क्रिया ही एकमात्र सहाय हैं । नाम, रूप, गुण और क्रियाके द्वारा ही वस्तुकी निरर्थकता दूरीभूत होकर सार्थकता प्रतिपादित होती है । जागतिक वस्तु समूहके नाम, रूप, गुण और क्रिया—नश्वर और परस्पर भिन्न हैं एवं परस्परमें मायिक व्यवधान वर्त्तमान है। जगतमें 'वृक्ष' शब्द, वृक्षका रूप, वृक्षके गुण और वृक्षकी क्रिया साक्षात् वही वृक्षवस्तु नहीं है। 'वृक्ष' इस नामसे वृक्षका स्वरूप या वृक्षका वस्तुत्व पृथक् है । 'वृक्ष' शब्दका उच्चारण करनेपर वृक्षका वस्तुत्व या फल उपलब्धि या उपभोग किया नहीं जा सकता। किन्तु 'कृष्ण' इस नाममें, कृष्णस्वरूप या साक्षात् कृष्णविग्रह आदिमें कोई भेद नहीं है । 'कृष्ण'—इस नामके कीर्त्तन द्वारा (नामाभास या नामापराधसे नहीं) साक्षात् कृष्ण स्वरूप या कृष्णके चिद्विलासमय विग्रह की उपलब्धि होती है । इसलिए कृष्ण ही एकमात्र 'परम अर्थ' अर्थात् नित्य रूप-रस-गन्ध-स्पर्श-शब्द युक्त नित्य वास्तव वस्तु हैं। वे आत्माके द्वारा चिन्तनीय हैं, आत्माकी चिदिन्द्रिय ग्राह्य वस्तु हैं । अर्थात् श्रीकृष्ण आँखों द्वारा दर्शनयोग्य वस्तु हैं, कानों द्वारा श्रवणयोग्य वस्तु हैं, नासिका द्वारा आघ्राण योग्य वस्तु हैं, त्वक् द्वारा स्पर्श योग्य वस्तु हैं, सर्वेन्द्रियों द्वारा सर्वेन्द्रियों की ग्राह्य वस्तु हैं।

किन्तु ये कृष्णवस्तु किनके एवं किस इन्द्रिय समूहकी ग्राह्य वस्तु हैं ? वे कदापि प्राकृत जीवोंकी मायिक इन्द्रियग्राह्य वस्तु नहीं हैं। जिसके द्वारा मापा जा सके, वही माया है । अतीन्द्रिय या अधोक्षज वस्तुको माया द्वारा मापा नहीं जा सकता। अप्राकृत वस्तु कदापि प्राकृत इन्द्रियोंके गोचरीभूत नहीं होते। भगवानके अप्राकृत नाम, रूप, गुण और लीला कदापि प्राकृत इन्द्रियों द्वारा ग्राह्य नहीं हैं। भगवान् हृषीकेशको इन्द्रिय समूह द्वारा ग्रहण किया जा सकता है, किन्तु इस द्वितीयाभिनिवेशयुक्त इन्द्रिय समूहके द्वारा—हम लोगोंके वर्त्तमान समयमें जिस चक्षु-कर्ण-नासिका-जिह्वा-त्वक् द्वारा मिट्टी, जल, कलकत्ता शहर, स्त्री, पुरुष, पुत्र-

परिवार, शत्रु-मित्र का भोग करते हैं, उन इन्द्रियसमूह द्वारा नहीं। जगतकी वस्तुएँ इन आँखोंका आकर्षण करती हैं, जगतके रूपसे ये आँखें मुग्ध हो जाती हैं, किन्तु श्रीकृष्ण मुक्त जीवोंके अप्राकृत नेत्रों अर्थात् कृष्णके अप्राकृत रूप सेवाभिलाषपर आँखों द्वारा देखे जाते हैं।

श्रीकृष्ण परतत्त्व वस्तु हैं। श्रीमद्-भागवतमें कहा गया है—'एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।' कृष्णके विभिन्न प्रकाश-विलास-विग्रह समूह, चतुर्व्यूह, त्रिविध पुरुषावतार, नैमित्तिक अवतारावली में कोई कृष्णके 'अंश' हैं, कोई 'कला' हैं। श्रीकृष्णको यदि कोई आंशिक रूपसे धारणा कर लें, तो कृष्णचैतन्यकी धारणा नहीं होगी। अप्राकृत जगतमें जो भी नाम-रूप-गुण-लीलादि है, वे सभी कृष्ण वस्तुके ही हैं। उनका विकृत प्रतिफलन हम इस जड़ जगतमें देख पाते हैं। हम लोग अघासुर बकासुर आदि वधके समय श्रीकृष्णकी महावदान्य लीला सम्यक् रूपसे हृदयङ्गम कर नहीं पाते। किन्तु अभिन्न नन्दनन्दन गौरसुन्दरकी लीलामें उनकी महावदान्य-लीला समझ सकते हैं। हम जैसे पतित पाषण्डी अक्षज-ज्ञान प्रतारित व्यक्ति तकको कृपापूर्वक चरम-मंगल प्रदान करनेके लिए उद्यत हैं। केवल थोड़ासा मङ्गल नहीं, साक्षात् कृष्णको प्रदान करनेके लिए वे सर्वदा ही उदग्रीव हैं। वे हमें जो महादान करनेके लिए उद्यत हैं, उसके फलसे साक्षात् कृष्णवस्तु हमारे लिए हस्तामलक (करतलगत) रूपसे हमारे सेव्य होकर हमारे निकट सर्वदा समुपस्थित रह सकते हैं। उन महावदान्य गौरसुन्दरकी अर्थात् उनका अनर्पितचर महादान समस्त जगतमें प्रदत्त हो—

"पृथिवीते आछे जेत नगरादि ग्राम।
सर्वत्र प्रचार हइबे मोर नाम।"

श्रीगौरसुन्दर सारे जगतको उस सम्पूर्ण कृष्णवस्तुको प्रदान करनेके लिए अत्यन्त लालायित हैं। किन्तु बहिर्मुख जगतके लोग ज्ञान समझकर अज्ञान-अविद्याके और प्रकाश समझकर अन्धकारके आश्रयमें वास कर रहे हैं।

कोई-कोई अपनेको बौद्ध समझकर अभिमान करते हैं। बुद्ध' का अर्थ है जाग्रत'। किसी बौद्ध को यदि पूछा जाय—तुम्हारी चेतनताका क्या जागरण हुआ है? चेतनकी वृत्तिकी सम्पूर्ण परिस्फुटावस्था ही क्या तुम्हारे मतानुसार अचित् परिणतिके लिए पिपासा है?' बौद्ध कहेंगे—बुद्धदेवने अचित् हो जानेके लिए या परिनिर्वाणावस्था प्राप्त करनेके लिए जीवोंको परामर्श दिया है। किन्तु श्रीजयदेवजीका कहना है—

"निन्दसि यज्ञविधेरहह श्रुतिजातं
सदयहृदयदर्शित-पशुघातम्।
केशव धृत बुद्धशरीर जय जगदीश हरे॥"

बुद्धदेवने अहिंसा धर्मका प्रचार किया है। किन्तु श्रीचैतन्यदेवकी दया क्या इतनी क्षुद्र दया है? श्रीचैतन्यदेवने जीवोंको किस हिंसा-धर्मसे रक्षा की है यह बात क्या बुद्धि-मान् व्यक्तियोंने एकबार भी विचार करके देखा है? बौद्ध लोग जानते हैं कि बुद्धदेवने स्थूल और सूक्ष्म

देहकी रक्षा या नाश करनेकी बात कही है। किन्तु आत्मवृत्तिकी रक्षा करनेकी बात तो नहीं कही है ? बुद्धदेवने जिस दयाकी बात कही है, श्रीचैतन्यदेवके पादपद्मोंमें अनन्त, कोटि गुणोंमें अनन्त प्रवाहमें उनकी अपेक्षा कितनी अधिक दया-स्रोत प्रवाहित हो रही है, इसका बुद्धिमान व्यक्ति भलीभाँति विचार करें।

श्रीचैतन्यदेवकी अमन्दोदया दया केवल-मात्र अविद्या-प्रतीति या बाह्य जगत्के चिन्ता-स्रोतसे रक्षा करनेके लिए नहीं है। परमात्माके साथ योग होनेकी बुद्धिसे, ब्रह्मके साथ एकीभूत होनेकी दुर्बुद्धिसे, निर्विलास और खण्ड परमात्मानुशीलनसे जो जीवकी रक्षा और परित्राण कर सकते हैं, श्रीचैतन्य-देव ऐसे महावदान्य हैं। जीवोंके प्रति श्रीचैतन्यदेवका जो महान् अनुग्रह है, उसकी कोई तुलना नहीं हो सकती। कोई-कोई यह सुनकर असन्तुष्ट हो सकते हैं। वे ऐसा कह सकते हैं कि बुद्धदेव विष्णुके ही अवतार हैं। किन्तु वे लोग क्या यह जानते हैं कि श्रीचैतन्य महाप्रभु सभी अवतारोंके भी मूल अवतारी हैं ? श्रीचैतन्यदेवके अहिंसा-धर्मके एक आंशिक भावमात्रका प्रचार करनेके लिए बुद्धदेव—उनके एक 'नैमित्तिक' शक्त्या-वेशावतार हैं और श्रीचैतन्य महाप्रभु नित्य अवतारी हैं। ऐसा अहिंसा-धर्म तो कोटि-कोटि गुणोंमें श्रीचैतन्य महाप्रभुके अतुल पादपद्मोंमें आबद्ध है। इसलिए श्रीचैतन्यानुगत व्यक्ति श्रीबुद्धदेवको कदापि अमर्यादा नहीं करते। किन्तु वे बौद्ध या माया विमोहित व्यक्तियोंकी बात नहीं सुनते। श्रीचैतन्यदेव की बातके ही अन्तर्भुक्त जगत्की समस्त उत्कृष्ट और उत्तम श्रेयः की बात है। श्रीचैतन्यदेवने सर्ववृत्ति द्वारा सब प्रकारसे श्रीकृष्णपादपद्मोंमें अनुगत होनेका आदेश दिया है।

गृहव्रत-धर्म और कुछ भी नहीं है, वह चैतन्यविमुखता या आत्मस्वरूपकी उपलब्धि का अभाव है। चेतन-धर्मकी विकृति होने पर ही अपने धर्मका स्वरूप जाना नहीं जा सकता। जीव—कार्ष्ण है, दूसरा कोई जीवका अभि-मान विरूपका ही अभिमान है। ऐसे अन्यरूप इतराभिमानमें आबद्ध होकर 'चैतन्यदेवके अनुगत' कहकर परिचय देना धृष्टता मात्र है। कायमनोवाक्यसे त्रिदण्डधृक् त्रिदण्डि संन्यासी लोग नित्यकाल विष्णु की सेवा करते हैं।

सूरियोंको दूसरी भाषामें 'वैष्णव' कहा जाता है। यदि हम आँखें प्रसारित कर अर्थात् दिव्यज्ञान प्राप्त आँखों द्वारा तत्त्ववस्तुका दर्शन करें, तो विष्णुकी ही 'परमतत्त्व' या 'पुरुषोत्तम' के रूपमें उपलब्धि होगी। विष्णु ही मूलदेवता हैं। उनसे ही दूसरे देवता लोग उत्पन्न हुए हैं। कोई-कोई सोचते हैं—वेदकथित 'भग' शब्दसे ही 'भगवान्' शब्द उत्पन्न हुआ है। उक्त 'भग' शब्दका अर्थ कोई-कोई 'सूर्य' बतलाते हैं। किन्तु सभी देवताओंके अन्तर्यामी रूपसे परमतत्त्व विष्णु ही विराजमान हैं। केवल यही नहीं, समस्त वस्तुओंके ही एक-मात्र मालिक विष्णु हैं। वे ही एकमात्र पालक हैं। सारा जगत् या समस्त वस्तु ही विष्णुका पाल्य है।

शाक्यसिंह जब उस विष्णुके ही अवतार हैं, तब वैष्णव लोग उनको अवज्ञा नहीं कर

सकते। उनकी अवज्ञा करना तो दूर रहे, वैष्णव लोग किसी भी मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतंग, तृण, गुल्म, लता, प्रस्तर, मृतिका आदि किसी का भी अनादर, असम्मान या किसीके प्रति हिंसा या पूजाका विधान नहीं करते। वैष्णव लोग ही एकमात्र अहिंसा धर्मके एकनिष्ठ सेवक हैं। जिन्हें वैष्णवताकी उपलब्धि नहीं हुई है, वे जितने ही नैतिक चरित्रवान्, परोपकारी, धार्मिक, सात्त्विक प्रकृति, महत् आदि नामसे जगत्में परिचित क्यों न हों, वे प्रतिमुहूर्त्त में ही बहुतसे जीवों की हिंसा कर रहे हैं, अपनेको स्वयं ही हिंसा कर रहे हैं। वैष्णव लोग ही समदर्शी हैं। परतत्त्वकी उपासना परित्याग कर दूसरी इतर प्रतीति लेकर अपरापर अधीन तत्त्वको पूजा नहीं होती। परतत्त्वसे विच्युत होकर कुत्ता, घोड़ा, चण्डाल या भूत-पूजा करना—कर्ममार्ग या पौत्तलिकता मात्र है। अच्युतकी उपासनामें ही अन्यान्य च्युत या विभिन्नांश वस्तु समूहकी पूजा हो जाती है।

"यथा तरोर्मूलनिषेचनेन
तृप्यन्ति तत्स्कन्धभुजोपशाखाः।
प्राणोपहाराच्च यथेन्द्रियाणां
तथैव सर्वार्हणमच्युतेज्या॥"
(भा० ४।३१।१४)

अन्य प्रतीतियुक्त अर्थात् केवलमात्र भूतानुकम्पाके वशवर्त्ती होकर प्राणियोंकी पूजा करनेसे उसके द्वारा विष्णुपूजा बाधा प्राप्त होती है। ऐसा कार्य अवैध है—

"येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम्॥"
(गीता ९।२३)

वैष्णवोंका किसी मतवादसे विरोध नहीं है, केवल संकीर्ण मतवादी और वञ्चित व्यक्तियोंके नित्य मंगलके लिए ही वास्तव वस्तुका यथार्थ स्वरूप वे लोग कीर्त्तन किया करते हैं।

श्रीगौरसुन्दरने नवद्वीपमें स्वगृहमें जो वास किया था वह बहुतसे गृहव्रत लोगोंको चैतन्य प्रदान करनेके लिए ही था। उन्होंने जो गृहस्थाश्रम त्याग—लीला प्रकट की थी, वह भी अचैतन्य जीवोंको चैतन्य प्रदान करनेके लिए की थी। वे जब संन्यास ग्रहण करनेके लिए उद्यत हुए, तब नवद्वीपवासी व्यक्तियोंके इन्द्रियतर्पणमें विघ्न उपस्थित होनेके कारण उन लोगोंमें श्रीगौरसुन्दरको बाधा देनेका प्रचेष्टा और दुर्बुद्धिका उदय हुआ था। श्रीमन्महाप्रभु अपनी माता और पत्नीको कह गये—'कृष्णको ही पुत्र और पति जानना।' पुत्रशोक कातरा जननी और पतिशोक कातरा निराश्रया प्राप्तवयस्का पत्नीका परित्याग कर वे दीनपतित जीवोंके नित्यकल्याणके लिए चल पड़े—जो सभी मंत्र पढ़कर उन्होंने विवाह किया था, उन समस्त जागतिक कर्त्तव्य-भारका परित्याग कर वे कृष्णकीर्त्तन के लिए चल पड़े। अचैतन्य मानव जातिको चैतन्य प्रदान करनेके लिए ही उन्होंने ऐसी अलौकिक चेष्टा दिखलाई थी।

बौद्धोंकी कथानुसार शाक्यसिंहने जिस प्रकार निर्वाण लाभेच्छा रूप स्वार्थके वशीभूत होकर संसार त्याग किया था, श्रीचैतन्य महाप्रभुकी संसारत्याग लीला उस प्रकार नहीं है। सारे जीवकुलके नित्य अभावको दूर कर नित्य सम्पत्ति देनेके लिए ही वे वनमें

गये थे। उन्हें किसी भी प्रकारका अभाव नहीं था। वे सारी नारी जातिके एकमात्र पति, पितृमातृ अनुभूतियुक्त व्यक्तियोंके एकमात्र पुत्र, सारे सख्य और दास्य भावाश्रित व्यक्तियोंके एकमात्र बन्धु और प्रभु हैं। श्रीचैतन्यदेवका महादान केवल बंगाल तक ही सीमित रहेगा—ऐसी बात नहीं है या श्री चैतन्यदेवका महान् दान केवल ब्राह्मण कुलोत्पन्न व्यक्तियोंका प्राप्य है—ऐसा भी नहीं है। सारा जगत्, सारे वर्ण, पापात्मा, पुण्यात्मा, सधर्मी, विधर्मा आदि सारे विश्वके समस्त प्राणी तत्तत् अभिमान परित्याग कर श्रीचैतन्यदेवका अनर्पितचर दान ग्रहण कर सकते हैं। श्रीचैतन्यदेव खण्ड या संकीर्ण नहीं हैं, वे महावदान्य हैं। वे परिपूर्ण सच्चिदानन्द-मय परम परतत्त्व विग्रह हैं। अचैतन्य जीवन दशा रूप दण्डसे छुटकारा दिलानेके लिए वे नित्य पूर्ण चेतनमय हैं। अचैतन्य जीवोंको चैतन्य प्रदान करनेके लिए ही वे जगत्में अवतीर्ण हुए थे। अतएव कहा गया है—

"हे साधवः ! सकलमेव विहाय दूरात्।
चैतन्यचन्द्र चरणे कुरुतानुरागम् ॥"
(श्रीचैतन्यचन्द्रामृत, ९० श्लोक)

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील सरस्वती ठाकुर

श्रील जीव गोस्वामी प्रभु

पौषी शुक्ला तृतीया-तिथिको श्रीश्रील जीव गोस्वामी प्रभुवरने अपनी इह-लीलाका संवरण किया था। श्रील श्रीजीव गोस्वामी प्रभुके सम्बन्धमें श्रील ठाकुर भक्तिविनोदने हम लोगोंको बतलाया है,—"श्रीजीव गोस्वामीके नाम श्रवणमात्रसे ही वैष्णव हृदय आनन्दसे नृत्य करने लगता है।" (श्रीसज्जनतोषणी—२ वर्ष)। श्रीश्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद लिखते हैं—'श्रीचैतन्यदेवको महाप्रभुके नाम से सभी व्यक्ति ही जानते हैं। महाप्रभुके प्रेमभाजन, गौरवपात्र श्रीनित्यानन्दको और श्रीअद्वैताचार्यको प्रभुके नामसे प्रायः सभी पहचानते हैं। श्रीचैतन्य महाप्रभुके अतिप्रिय त्यक्तगृह प्रेमी कविगण "गोस्वामी" की संज्ञासे अभिहित हैं। श्रीवृन्दावनवासी गोस्वामी जनोंकी संख्या अनेक होनेपर भी भी छः महापुरुषोंकी कथाका सर्वत्र गुणगान होता है। छः गोस्वामियोंमें अन्यतम श्रील श्रीजीव प्रभु हैं। वे श्रील रूप गोस्वामीके

अनुग कहकर अपना परिचय प्रदान करते हैं। श्रीजीवके परम गुरुदेव श्रीसनातन गोस्वामी प्रभु हैं । श्रीचैतन्यचन्द्र उनके उपास्य हैं। श्रीचैतन्यचन्द्र गौड़ीयजनोंके निर्मल दर्शनमें साक्षात् अभिन्न व्रजेन्द्रनन्दन हैं । श्रीजीव गोस्वामी बृहद्व्रती आकुमार नैष्ठिक ब्रह्मचारी की लीलाको प्रकट करनेवाले, चिरजीवन चिद्विलास सरस्वतीके सहित वासकारी हैं। वे गौड़ीय वैष्णवाचार्य-शिरोमणि हैं ।" (गौड़ीय १ वर्ष, ४ संख्या)।

श्रील प्रभुपादने अपने द्वारा सम्पादित "श्रीसज्जनतोषनी" में "तोषणी की कथा" नामक प्रबन्धमें भी लिखा है—"श्रीजीव गोस्वामी की अपार करुणासे आज श्रीमन्महाप्रभु द्वारा प्रचारित कृष्णप्रेम स्वरूप श्रीरूपानुग भक्तिधर्म जगतमें समस्त जीवोंको अनन्त कल्याण प्रदान कर रहा है। श्रीजीव प्रभुने बगला भाषामें किसी भी ग्रन्थकी रचना नहीं की । उनके "सन्दर्भ" नामक ग्रन्थसे ही श्रीरूपानुगवर पूज्यपाद श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामीने श्रीचैतन्यचरितामृत ग्रन्थमें कतिपय सिद्धान्त उद्धृत करके भक्तिधर्मके शिक्षित व्यक्तियोंको आनन्द प्रदान किया है । श्रीरूपानुगगणके मूलगुरु श्रील जीव गोस्वामी और श्रील रघुनाथदास गोस्वामी प्रभु—ये दो महापुरुष हैं। रुचि प्रधान मार्गके आचार्यस्वरूप होकर श्रीरघुनाथदास गोस्वामी प्रभुने भजनमार्गके सुगम पथमें सुकृत जीवोंको आकर्षित किया है। अजातरुचि (भजनमें स्वाभाविक रुचिरहित) व्यक्तियोंके यथार्थ मंगलके लिए अप्राकृत रसिकशेखर श्रीजीवपादने वैधमार्गीय व्यवहार द्वारा सम्प्रदाय वैभवका संरक्षण किया है एवं अपने गुरुदेवके अप्राकृत महत्वके अधिष्ठानमें किसीको भी जिसमें सन्देह उत्पन्न न हो, उसके लिए यथोचित प्रबन्ध किया है ।" (श्री सज्जनतोषणी—१८ वर्ष, ५ संख्या)।

श्रील सनातन और श्रील रूप प्रभुने अपनी परम दीनताके कारण 'नीचवशजात', 'नीच जात', 'नीचसंगी' आदि कहकर अपना परिचय दिया है। "सनातन कहे,—नीचवशे मोर जन्म । अधर्म अन्याय जेत आमार कुलधर्म ।।" (—चै० च० अन्त्य ४।२८) नीच जाति, नीच सग, करि नीच काज । तोमार अग्रेते प्रभु कहिते बासि लाज ।। (चै० च० मध्य ।१८९) स्थूल बुद्धि वाले पण्डितजन जगद्गुरुजनोंकी इस दैन्य-लीलाका तात्पर्य न समझकर स्वयं भगवान महाप्रभुको जिस प्रकार मायावादी संन्यासी कहकर भ्रान्त हुए हैं, उसी प्रकार नित्यसिद्ध भगवद् पार्षद श्रीसनातन और श्रीरूप गोस्वामी प्रभुको भी 'नीच कुलोद्भूत' या नीच जाति मानकर अपराध-कीचड़में निमग्न हुए हैं । श्रीजीव गोस्वामी प्रभु कृपापूर्वक अपनी लेखनी द्वारा अपने पूर्वगुरुवर्गका और वंशका प्रकृत परिचय यदि प्रदान न करते, तो बहिर्मुख मनुष्य जाति इस अपराध कीचड़ में ही निमज्जित रहती। श्रील जीव गोस्वामी प्रभुने श्रीमद्भागवतके दशम् स्कन्धकी स्वकृत 'लघुतोषणी'—टीकाके उपसंहारमें जो अपना वंश-परिचय प्रदान किया है, उसी विवरणके द्वारा हम लोग यह जानते हैं:—

"श्रील जीव गोस्वामी प्रभुके उर्द्ध्वतन पुरुषका नाम 'श्री सर्वज्ञ' था। कर्नाटक देशके ब्राह्मणोंमें सर्वज्ञ सर्वपूज्य थे। वे जगद्गुरु के नामसे भी प्रसिद्ध थे। वे उस देशके राजा थे। सब शास्त्रोंमें विशारद, भरद्वाज-गोत्रीय-यजुर्वेदी ब्राह्मण और अलौकिक पाण्डित्य-

प्रतिभा-गुणावलीसे विभूषित होनेके कारण बंगदेशसे भी विद्यार्थियोंने वहाँ जाकर उनका शिष्यत्व ग्रहण किया था। उन्हीं सर्वज्ञ जगद्गुरुके पुत्र 'श्रीअनिरुद्ध' थे। ये भी यजुर्वेदमें असामान्य सुपण्डित और जगत्पूज्य हुए थे। उनकी दो पटरानी और दो पुत्र थे। दोनों पुत्रोंका नाम—'श्रीरूपेश्वर' और 'श्रीहरिहर' था। इनमेंसे प्रथम तो शास्त्रमें और दूसरे शस्त्रमें दक्ष थे। हरिहरने रूपेश्वर का राज्य आत्मसात् कर लिया। रूपेश्वर निरुपाय होकर आठ घोड़े और अपनी स्त्री-सहित पौरस्त्य देशमें आगमन कर वहाँके राजा शिखरेश्वरके साथ मित्रता स्थापन कर वहीं वास करने लगे। रूपेश्वरके पुत्रका नाम—'श्रीपद्मनाभ' था।

पद्मनाभ **नैहाटी ग्राममें गंगाके किनारे** वास करते थे। उनकी अठारह कन्याएँ और पाँच पुत्र थे। कनिष्ठ पुत्रका नाम—'श्रीमुकुन्द' था। इनके पुत्र 'श्रीकुमारदेव' थे। नैहाटीमें धर्मविप्लव उपस्थित होनेपर सदाचारनिष्ठ कुमारदेव बाकला चन्द्रद्वीपमें जाकर वास करने लगे। नैहाटी और बाकलाके बीचमें यशोहर नामक प्रदेशके अन्तर्गत(जो वर्तमानमें पूर्व पाकिस्तानमें है) फतेयाबादमें भी उन्होंने रहनेके लिए एक स्थान बनाया। श्रीकुमार-देवके अन्यान्य पुत्रोंमें से 'श्रीसनातन','श्रीरूप' और 'श्रीवल्लभ'—ये तीनों ही विश्व-वैष्णवों के प्राणस्वरूप थे। इन तीनों भाइयोंमें श्रीसनातन सबसे बड़े थे और श्रीवल्लभ कनिष्ठ। श्रील श्रीजीव गोस्वामी प्रभु श्री-वल्लभके एकमात्र पुत्र थे। श्रील श्रीजीव प्रभु बाकला चन्द्रद्वीपमें आविर्भूत हुए थे। इस प्रकार कुमारदेवके स्वधाम प्राप्तिके बाद श्रीसनातन, श्रीरूप और श्रीवल्लभने गौड़ राजधानीके साकूर्मा नामक एक छोटेसे गाँव में मामाके घरमें रहकर विद्यार्जन किया और इसके बाद श्रीसनातन और श्रीरूपने गौड़देश के बादशाहका मन्त्री पद स्वीकार करके क्रमशः 'साकरमल्लिक' और 'दबिरखास' उपाधि प्राप्त कीं।

सुना जाता है कि श्रीमन्महाप्रभुकी अप्रकट लीलाके समय श्रीजीव गोस्वामी प्रभु दस वर्षके बालक थे। 'श्रीभक्तिरत्नाकर' में लिखा हुआ है कि जिस समय श्रीमन्महाप्रभु श्रीरूप सनातनको अंगीकार करनेके लिए रामकेलि ग्राममें गये तब शिशुबुद्धि श्रीजीव गोस्वामी प्रभुने छिप-छिपकर श्रीमन्महाप्रभुके श्रीचरणारविन्दोंका दर्शन किया। श्रीजीवप्रभु शैशवकालमें श्री श्रीरूप-सनातनके निकट रामकेलि ग्राममें ही रहते थे।

"श्रीजीवादि संगोपने देखिल।
अति प्राचीनेर मुखे ए सब शुनिल॥"

(श्रीभक्तिरत्नाकर—१ तरंग, ६३८ संख्या)

बाल्यकालसे ही श्रीजीव गोस्वामी श्री-मद्भागवतके अनुरागी थे। अल्पकालमें ही उन्होंने व्याकरण, काव्य, अलंकार आदि शास्त्रोंमें सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त कर लिया था। उनकी अपूर्व रूप माधुरी एवं अतिमर्त्य (अमानुषिक) गुणगरिमाको देखकर सभी विस्मित हो जाते थे। श्रीश्रीरूप-सनातनकी श्रीव्रजवास लीला और श्रीगौरसुन्दरकी अप्रकट लीलाके बाद श्रील श्रीजीव गोस्वामी प्रभुका हृदय अत्यन्त दुःखित हो उठता था। वे श्रीश्रीरूप-सनातन और श्रीगौरसुन्दरके

पादपद्मोंकी चिन्तामें दिनरात प्रेमाश्रु बहाया करते थे। एक दिन श्रीगौरसुन्दरके श्रीनाम-संकीर्तनमें श्रीजीव प्रभु क्रन्दन करते-करते अत्यन्त अधीर हो पड़े। शेष रात्रिको स्वप्नमें सपार्षद श्रीगौरसुन्दरने श्रीजीवप्रभुको दर्शन देकर उनको श्रीनित्यानन्दके श्रीचरणोंमें समर्पित किया। श्रीनित्यानन्द प्रभु भी श्रीजीवको कहने लगे कि श्रीमन्महाप्रभु ही श्रीजीवके सर्वस्व हों। श्रीजीवप्रभुने बाकुलाचन्द्रद्वीपसे फतेयाबाद होते हुए श्रीधाम मायापुर-नवद्वीपमें आकर श्रीनित्यानन्द प्रभुके आनुगत्यमें श्रीनवद्वीप-धामकी परिक्रमा की।

तदनन्तर श्रीजीव गोस्वामीने काशीमें आकर श्रीमधुसूदन वाचस्पतिके पास कुछ समय तक सर्वशास्त्रोंका अध्ययन किया। एक किंवदन्तीके अनुसार नीलाचलमें श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने श्रीकृष्णचैतन्यदेवके निकट जो चिद्विलासमय वैदान्तिक सिद्धान्त श्रवण किया था, वे ही सब वेदान्त-विचार श्रीसार्वभौमने अपने शिष्य श्रीमधुसूदनको बतलाया। श्रीनित्यानन्दके आदेशानुसार श्रीजीवने श्रीमधुसूदन वाचस्पतिके पास जाकर न्याय-वेदान्तादि शास्त्रके अध्ययनके समय श्रीमन्महाप्रभु द्वारा कथित उस विषय का श्रवण किया था।

श्रीजीव गोस्वामी श्रीकाशीधामसे श्रीवृन्दावनमें आकर श्रीश्रीरूप-सनातनके एकान्त आश्रित होकर उनके पास सम्पूर्ण श्रीमद्भागवत और भक्तिशास्त्रका अध्ययन किया तथा उस समय श्रीव्रजमण्डलमें ही वास किया। श्रीजीवके अभूतपूर्व स्वाभाविक पांडित्य और स्वतःसिद्ध भक्तिसिद्धान्त-विचार दर्शनसे सन्तुष्ट होकर श्रीश्रीरूप-सनातन गुरुद्वय स्वकृत ग्रन्थादिका श्रीजीवके द्वारा शोधन कराते थे। "श्रीरूप 'श्रीहंसदूत' आदि ग्रन्थ कैला। सनातन 'भागवतामृतादि' वर्णिला॥ 'श्रीवैष्णव तोषणी' करिया सनातन। श्रीजीवेरे आज्ञा दिला करिते शोधन॥"

(श्रीभक्तिरत्नाकर, १।७९१-७९२)

श्रीलजीव गोस्वामी प्रभुने बहुतसे ग्रन्थोंकी रचना की है। उनके शिष्य श्रीकृष्णदास अधिकारीने श्रीसनातन, श्रीरूप और श्रीजीव प्रभुके द्वारा रचित ग्रन्थोंकी तालिका प्रस्तुत की है। 'श्रीभक्तिरत्नाकरकी प्रथम तरंगमें श्रील श्रीजीव गोस्वामी प्रभुके २५ ग्रन्थोंकी इस प्रकार तालिका मिलती है—

(१) हरिनामामृत व्याकरण, (२) सूत्रमालिका, (३) धातु-संग्रह, (४) कृष्णार्चनदीपिका, (५) गोपाल विरुदावली, (६) श्रीमाधव-महोत्सव, (७) रसामृतशेष, (८) श्रीसंकल्पकल्पवृक्ष, (९) भावार्थसूचक चम्पू, (१०) गोपालतापनी टीका, (११) ब्रह्मसंहिता टीका, (१२) रसामृत टीका, (१३) श्रीउज्ज्वल-टीका, (१४) योगसारस्तव टीका, (१५) अग्निपुराणका 'श्रीगायत्री भाष्य', (१६) श्रीकृष्णके पदचिन्ह, (१७) श्रीराधिका-कर-पदस्थित चिन्ह, (१८) गोपालचम्पू, (१९-२५) सप्तसन्दर्भ (तत्त्व, भगवत्, परमात्म, कृष्ण, भक्ति, प्रीति और क्रम संदर्भ), (श्रीभक्तिरत्नाकर—प्रथम तरंग, ८३३-८४२)।

श्रीश्रील प्रभुपादने श्रीचैतन्य चरितामृतके अनुभाष्यमें बतलाया है—अनभिज्ञ प्राकृत-सहजिया सम्प्रदायमें श्रीजीव गोस्वामी प्रभुके विरुद्ध निम्नलिखित तीन अपवाद प्रचलित हैं। इसके द्वारा निश्चितरूपसे श्रीहरि-गुरु-वैष्णवोंके प्रति उनके अपराधमें वृद्धि ही है—

(१) जड़प्रतिष्ठा भिक्षु एक दिग्विजयी पण्डितने निष्किन्चन श्रीश्रीरूप-सनातनसे जयपत्र लिखाकर गुरुवर्ग (श्रीरूप-सनातन) की मूर्खता दिखलानेका प्रयास कर श्रीजीवको भी जयपत्र लिख देनेके लिए कहा। श्रीजीव-प्रभुने उसकी बात सुनकर दिग्विजयीको पराजित करके गुरुके अपवादकारीको जिह्वा स्तंभित कर गुरुदेवके पदनख-शोभाकी मर्यादा प्रदर्शित करते हुए शिष्यका आदर्श स्थापित किया। सहजिया लोग इस प्रकार भी कहते हैं कि—श्रीजीवके इस प्रकारके आचरणसे उनकी तृणादपि सुनीचता और मानद धर्म-विरोधके कारण श्रीरूप गोस्वामी प्रभुने उनकी तीव्र भर्त्सना करके परित्याग कर दिया। बादमें श्रीसनातन गोस्वामी प्रभुके इशारे पर पुनः श्रीजीव प्रभुको ग्रहण किया। ये गुरु-वैष्णव-विरोधीगण कृष्णकृपासे जिस दिन अपनेको गुरु वैष्णवका नित्यदास समझेंगे, उसी दिन श्रीजीव प्रभुकी कृपा पाकर 'तृणादपि सुनीच' और 'मानद' होकर हरिनाम कीर्तनके अधिकारी होंगे।

(२) कोई-कोई अनभिज्ञ कहते हैं—श्री-कविराज गोस्वामी प्रभुकी 'चरितामृत' की रचनाका सौष्ठव और अप्राकृत व्रजरस माहात्म्य जानकर अपनी प्रतिष्ठा समाप्त होनेकी आशंका से श्रीजीवकी हिंसाका उदय होने पर उन्होंने मूल 'चरितामृत' को एक कुएँमें डाल दिया। कविराज गोस्वामीने यह सुनकर अपने प्राण विसर्जन कर दिये। 'मुकुन्द' नामके उनके शिष्यने पहले ही मूल पाण्डुलिपिकी नकल करके रख लिया था तब पुनः चरितामृत प्रकाशित हुई अन्यथा चरितामृत ग्रन्थ इस जगत्से लुप्त हो जाता।

इस प्रकारकी हेय और अनुचित वैष्णव विद्वेषमूलक कल्पना नितान्त मिथ्या और असम्भव है।

(३) इसके अलावा कोई-कोई इन्द्रिय-परायण व्यभिचारी कहते हैं—श्रीजीव प्रभुने श्रीरूप गोस्वामीके मतानुयायी व्रजगोपीजनों का 'पारकीय रस' स्वीकार न करके 'स्वकीय रस' का अनुमोदन किया, इसलिए वे रसिक भक्त नहीं थे। इसलिए उनका आदर्श ग्रहणीय नहीं है।

प्रकटकालमें अपने सेवकोंमें से किसी-किसी भक्तकी स्वकीय रसमें रुचि देखकर उनके भावको जानकर और बादमें अनाधि-कारी व्यक्ति अप्राकृत परम चमत्कारमय पारकीय व्रजरसके सौन्दर्य और महिमाको न समझकर स्वयं उस प्रकारका अनुष्ठान करते हुए व्यभिचारको घसीट न लाये, इसीलिए वैष्णवाचार्य श्रीजीव प्रभुने स्वकीयवादको स्वीकार किया है; किन्तु इससे उनको अप्राकृत पारकीय व्रजरसका विरोधी नहीं समझना चाहिए। क्योंकि वे स्वयं श्रीरूपा-नुगवर—साक्षात् श्रील कविराज गोस्वामीके शिक्षा-गुरुवर्गके अन्यतम हैं।

श्रील जीव गोस्वामी प्रभुका सिद्धान्त जो श्रीश्रीरूप-सनातनके शासनमें सर्वदा वर्तमान है, उसको बहुत ही सुयुक्तिपूर्ण श्रौत विचारके द्वारा श्रीभक्तिविनोद ठाकुरने 'श्रीब्रह्मसंहिता' को 'प्रकाशिनी' वृत्तिमें प्रदर्शित किया है। उसमें "श्रीजीव-गोस्वामीपाद हम लोगोंके तत्वाचार्य हैं, इसलिए श्रीश्रीरूप-सनातनके शासन गर्भमें सर्वदा वर्तमान हैं, अधिक क्या, वे श्रीकृष्णलीलामें मंजरीविशेष हैं; अतएव समस्त तत्वको ही वे परिपूर्ण रूपसे जानते हैं"—ठाकुर श्रील भक्तिविनोदकी यह बात सभीके लिए विशेष ग्रहणीय एवं आदरणीय है।

(श्रीगौड़ीय पत्रिकासे उद्धत)

अनुवादक—ओमप्रकाश दासाधिकारी बी. ए. साहित्यरत्न

पत्रिकाके ग्राहकोंसे नम्र-निवेदन

श्रीभागवत-पत्रिकाका १६वाँ वर्ष चल रहा है। श्रीभगवत्कृपासे श्रीपत्रिका नियमित रूपसे प्रकाशित हो रही है। पत्रिकाके आदरणीय ग्राहकोंसे हमारा नम्र-निवेदन है कि जिन सज्जनोंके नाम पर पत्रिकाको जो भी भिक्षा बकाया हो, उसे यथाशीघ्र मनीआर्डर द्वारा प्रेरित करनेका अनुग्रह करें और हमें उत्साहित और आनन्दित करें। पत्रिका सम्पूर्णतया आप सज्जनोंकी हार्दिक सहानुभूति एवं सहायताके ऊपर निर्भर रहकर ही चल रही है।

विनीत निवेदक :

कृष्णस्वामीदास ब्रह्मचारी

(कार्याध्यक्ष)

श्रीचैतन्य-शिक्षामृत

द्वितीय-खण्ड सप्तम, वृष्टि—रसविचार

प्रथमधारा

साधारण रस-विचार

रस क्या है ? उत्तर—आनन्द। आनन्द-स्वरूप रस ही अक्षय पदार्थ है। रस नित्य वस्तु है। यहाँ संशय हो सकता है कि जब भाव योजनापूर्वक रसका उदय होता है, तब योजनाके पूर्व रसका अभाव था और योजना समाप्त होने पर रसका अभाव हो जायगा; अतः रसको नित्य कैसे माना जाय ? इसका उत्तर यह है कि हम जिस रसका विचार करने जा रहे हैं, वह अनादि और अनन्त है। स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव और संचारी भाव—ये रस-सामग्रियाँ भी नित्य हैं। इनकी योजना—सम्मिलन भी नित्य है। चिद् वस्तु जहाँ है, नित्य रस वहीं है। चित् स्वरूप भगवान्, जीव और वैकुण्ठ जिस प्रकार नित्य हैं, उसी प्रकार रस भी नित्य है। तैत्तिरीय उपनिषदमें परम तत्त्व-वस्तुको रस-स्वरूप कहा गया है—रसो वै सः रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति। अर्थात् परम वस्तु रस स्वरूप है, जीव उनको लाभ कर आनंद प्राप्त कर लेता है। प्रेमको लाभ करके जीव जिस रसको प्राप्त करता है, वह रस प्रेमतत्त्वके साथ नित्य अवस्थित है, अधिकारी जीवोंमें उसका उदय मात्र संभव है। भगवानके साथ जीवके नित्य सम्बन्धका आविष्कार ही रसोदय है।

साधारण आलंकारिकोंने भी एक प्रकारके रसका उल्लेख किया है। किन्तु वह जड़ रस है। जीव जड़बद्ध होने पर लिंग या सूक्ष्म शरीरसे आवृत हो जाता है। लिंग शरीरमें अहंकार, बुद्धि, चित्त और मन—ये चार तत्त्व है जो आत्म-तत्त्वसे पृथक् जड़ तत्त्व ही के प्रकारभेद हैं। बद्ध जीव इन जड़ीय सूक्ष्म तत्त्वोंसे आवृत होने पर उनमें ही आत्मबुद्धि करने लगता है। अहंकार द्वारा पहले अपनेको जड़ सम्बन्धीय पुरुष या स्त्री अभिमान करके बुद्धि द्वारा उसका हिताहित चिन्ता करते हैं। चित्त द्वारा सुख-दुःखको भावना करते हैं। जीव बद्ध होने पर क्या इन चार तत्त्वों को नये रूपमें संग्रह करता है ? अथवा इन तत्त्वोंका शुद्ध बीज उसमें पहलेसे ही विद्यमान रहता है ? उत्तर—ये नवीन तत्त्व नहीं हैं। चित्स्वरूप जीवके शुद्ध स्वरूपमें मैं अमुक नाम-रूप-गुणवाला भगवानका दास हूँ'—ऐसा एक शुद्ध अभिमान था। वह अभिमान जीवके चिद्गत शुद्ध अहङ्काररूप चित्स्वरूप को आश्रय करके विद्यमान था। चित्स्वरूपको आश्रय करके आनन्दकी उपलब्धि करनेवाली शुद्ध बुद्धि भी थी। अन्य पदार्थ, अन्य जीव और परम पुरुष भगवानको विषय जान करके उनके ज्ञान और ध्यानोपयोगी मन भी था। जड़बद्ध होने पर उन सब चिद्गत वृत्तियोंके जड़ सम्बन्धसे लिंग और स्थूल रूपमें परिणत होनेपर तत्तद्विषय रूप जड़ीय और अशुद्ध वृत्तियाँ प्रकाशित हुई हैं। अतएव जो रस चिद् आश्रयसे शुद्ध भाव था, जड़ाश्रय से अब वही विकृत और अशुद्ध भावके रूपमें प्रकटित है। जड़ आलङ्कारिक इसी अशुद्ध

भावको ही भाव कहते हैं।

रस एक ही वस्तु है। नित्यावस्थामें वह नित्यानन्द स्वरूप है तथा वही जड़बद्धावस्था में जड़ानन्द स्वरूप या जड़ दुःख-स्वरूप है। इसीलिये जड़ आलंकारिकों द्वारा वर्णित नाम, सम्बन्ध, व्यवहार-प्रक्रिया और फल—जो जड़ रसमें परिलक्षित होते हैं, वे सभी चिद् रसमें शुद्धरूपमें हैं। जड़ रसमें किसी प्रकार का भेद स्वीकार नहीं किया जा सकता है; केवल प्रकृति भेद स्वीकार किया जा सकता है। चिद्रस नित्य है, जड़रस अनित्य है। चिद्रस उपादेय है, जड़ रस हेय है। चिद्रसके विषय और आश्रय क्रमशः भगवान् और शुद्ध जीव हैं, जड़ रसके विषय और आश्रय जड़-देहगत हेय-सौन्दर्य एवं जड़ लिंग-मय चित्त हैं। चिद् रसका स्वरूप आनन्द है और जड़ रसका स्वरूप दुःख-सुख है*।

रस-तत्त्वके निरूपणमें वाक्यकी लक्षणा-वृत्तिकी सहायता लेनेकी आवश्यकता नहीं होती। अभिधा-वृत्ति द्वारा ही वह कार्य सम्पन्न हो जाता है। यदि ऐसी बात नहीं होती तो श्रीमद्भागवत-ग्रन्थ परम-रसको पूर्णतः कृष्णलीलाके रूपमें वर्णन नहीं करते। इस जगतमें प्राकृत नायक-नायिकाको शृङ्गार पद्धतिमें, पिता-पुत्रके सांसारिक व्यवहारमें, सखाओंके पारस्परिक आचरणमें तथा प्रभु और दासके पारस्परिक कार्योंमें—अप्राकृत रसने अपनी शुद्धावस्थाके सभी लक्षण, प्रयोजनीय उपकरण समूह, कार्य-विधियाँ और प्रक्रियाएँ विकृत रूपमें बद्धजीवोंको दिखलाया है। रस स्वप्रकाश वस्तु हैं। यदि वे स्वयं प्रकट नहीं होते तो, उनको कौन प्रकट कर सकता था? परमानन्द तत्त्व विकृत होने पर भी अपना स्वरूप, गुण और सभी लक्षण इस जगतमें जड़ीय रसके माध्यमसे बद्धजीवोंके कल्याणके सूत्ररूपमें प्रकट करते हैं। अतएव अभिधावृत्ति द्वारा रस वर्णनमें कोई कठिनता नहीं है। जो लोग उस वर्णन को सुनकर अपना चिद् रस उदय करानेकी अभिलाषा रखते हैं, उन्हें केवलमात्र यह स्मरण रखना होगा कि जड़ रसमें जो हेय बातें हैं, उनको अपनी प्रक्रियामें प्रवेश न होने दें।

किसी-किसी सम्प्रदायमें चिद् रसको

---

*यथा जले चन्द्रसमः कम्पादिस्तत्कृतो गुणः। दृश्यतेऽसन्नपि द्रष्टु रात्मनोऽनात्मनो गुणः॥
(भा० ३। ७। ११)

दैवाधीने शरीरेऽस्मिन् गुणभाव्येन कर्मणा। वर्तमानोऽबुधस्तत्र कर्त्तास्मीति निबध्यते॥
(भा० ११। ११। १०)

जन्तुर्वै भव एतस्मिन् यां यां योनिमनुव्रजेत्। तस्यां तस्यां स लभते निर्वृतिं न विरज्यते॥
(भा० ३। ३०। ४)

एवं कुटुम्बभरणे व्यापृतात्माजितेन्द्रियः। म्रियते रुदतां स्वानामुरुवेदनयाऽस्तधीः॥
(भा० ३। ३०। १८)

इन अवस्थाओंमें जड़ीय रसके पण्डितोंके अलंकारके प्रति तुच्छ बुद्धि होती है।

प्रकट करानेकी आड़में जड़ रसका अवलम्बन किया जाता है । परन्तु यह बड़ी बुरी और घृणित बात है। इससे जीवोंका बारम्बार पतन संभव है । जीवोंकी सिद्ध देहमें ही रसोद्भावना करना कर्तव्य है । किसी अवस्थामें इस जड़बद्ध देहमें उसका सम्बन्ध नहीं पैदा होता ।

श्रृंगार रसकी साधनामें किसी-किसी सम्प्रदायके लोग स्त्रीसंगके द्वारा जो कुचेष्टाएँ करते हैं, वह उनके लिये तथा समाजके लिये दुर्भाग्य एवं कलंककी बात है। जो निषेध है, उसे ही करते हैं और फलस्वरूप अधःपतनके गर्तमें सदाके लिए गिर पड़ते हैं। इस विषयमें रसके साधकोंको विशेष रूपसे सावधान रहना चाहिए । इन्द्रियलोलुप धर्मध्वजियोंकी कोई भी कुपरामर्श नहीं सुनेंगे ।

सांसारिक विषयोंसे वैराग्य-प्राप्त तथा जातप्रेम व्यक्ति ही रसके अधिकारी हैं। जिन लोगोंका जड़विषयोंसे वैराग्य नहीं हो गया हो तथा उनके हृदयमें शुद्ध-रति पैदा नहीं हुई हो—ऐसे लोगोंका रसमें अधिकार नहीं है। यदि ऐसे व्यक्ति रसमें अनाधिकार चेष्टा करते हैं, तो वे अवश्य ही भ्रष्ट होकर दुराचारमें फँस जाते हैं । जिनके हृदयमें प्रेम प्रकट हो गया है, ऐसे जातप्रेम व्यक्तियोंके हृदयमें जो भाव सहज ही हुए हैं, वही रस है । रस विचार में केवल यहाँ तक विचार होता है कि उस रसमें कौन-कौन भाव किस प्रकारसे संयोजित हैं । रस साधनांग नहीं है। अतएव कोई यदि यह कहे कि 'आओ मैं तुम्हें रससाधनकी शिक्षा दूँ', तो यह उसकी धूर्त्तता या मूर्खता मात्र है।*

---

*स्त्रीणां स्त्रीसङ्गिनां संगं त्यक्त्वा दूरत आत्मवान् ।
क्षेमे विविक्त आसीनश्चिन्तयन्मामतन्द्रितः ॥
भा० ११ । १४ । २९

मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा नाविविक्तासनो वसेत् । बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ॥
(भा० ९ । १९ । १७)

सङ्गं न कुर्यात् प्रमदासु जातु योगस्य पारं परमारुरुक्षुः ।
मत्सेवया प्रतिलब्धात्मलाभो वदन्ति या निरयद्वारमस्य ॥
(भा० ३ ।३१ । ३९)

सत्यं शौचं दया मौनं बुद्धिर्ह्रीः श्रीर्यशः क्षमा।
शमो दमो भगश्चेति यत् संङ्गाद्याति संक्षयम् ॥
तेष्वशान्तेषु मूढेषु खण्डितात्मस्वसाधुषु । संगं न कुर्याच्छोच्येषु योषित्क्रीडामृगेषु च ॥
(भा० ३ । ३१ । ३३—३४)

श्रीचैतन्य महाप्रभुके स्वयं-भगवत्ता प्रतिपादक कतिपय शास्त्रीय प्रमाण

(गताङ्कसे आगे)

एक दिन अर्द्ध-रात्रि तक कृष्ण-कथाके पश्चात् श्रीमन्महाप्रभुजीको विश्राम करते हुए अनुमान कर श्रीस्वरूपदामोदर और राय रामानन्दजी विश्राम करने चले गए। उस समय महाप्रभुजी गंभीरा नामक एक छोटेसे घरमें रहते थे। उन दोनोंके चले जाने पर महाप्रभुजीके प्रिय सेवक गोविन्द गंभीरा के द्वारपर लेट गए, जिससे महाप्रभुजी कहीं बाहर न चले जाय। उनको कुछ झपकी सी लग गई। इसी बीच श्रीचैतन्य महाप्रभुजी को अकस्मात् कृष्णकी मधुर वेणु-ध्वनि सुनाई दी। वे तुरन्त भावावेशमें उठकर उसी ओर दौड़ पड़े। रास्तेमें गोविन्द सोये रह गए। तीनों प्रकोष्ठोंके तीनों फाटक ज्यों-के-त्यों लग रहे। महाप्रभुजी सबको पारकर न जाने किस प्रकार बाहर निकल गये। कुछ देर तक महाप्रभुजीका शब्द सुनाई न पड़ने पर गोविन्दको कुछ सन्देह हुआ। वे महाप्रभुजी को वहाँ न देखकर चारों ओर खोजने लगे। तत्पश्चात् उन्होंने स्वरूप दामोदरजीको उठाया, फिर दोनोंने प्रदीप जलाकर क्रमसे तीनों प्रकोष्ठोंमें भलीभाँति खोजकर फाटकों को खुलवाकर सिंहद्वारपर आये। वहाँ उन्होंने महाप्रभुजीको एक अद्भुत अवस्थामें गायों के झुण्डके बीच अचेतन पड़े हुए देखा। उनका सारा अङ्ग पुलकित हो रहा था, मुखसे फेन गिर रहा था, आँखोंसे अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी। उनके हाथ-पैर कछुए की भाँति उनके पेटके भीतर प्रविष्ट हो गए थे, मानो कोई गोल-मोल पोटली पड़ी हुई हो। महाप्रभुजीको इस अद्भुत अवस्थामें देखकर भक्तवृन्द बड़े विस्मित एवं भयभीत हुए। किसी प्रकार उन्हें उठाकर गंभीरामें ले आये और सभी मिलकर जोरोंसे कृष्णनामसंकीर्त्तन करने लगे। कुछ देर बाद महाप्रभुजी को अर्द्ध बाह्य-ज्ञान हुआ। उनके हाथ-पैर पुनः पेटसे बाहर निकल आये। अब वे कृष्ण-विरह में फूट-फूटकर रोने लगे। सम्पूर्ण भक्तमण्डली अवाक् थी।

शास्त्रीय प्रमाण

मंगलाचरण (क)

अनर्पितचरीं चिरात् करुणयावतीर्णः कलौ
समर्पयितुमुन्नतोज्ज्वलरसां स्वभक्तिश्रियम्।
हरिः पुरटसुन्दरद्युतिकदम्बसन्दीपितः
सदा हृदयकन्दरे स्फुरतु वः शचीनन्दनः॥ ॥

(श्रीरूप गोस्वामी-कृत विदग्धमाधवे)

सुवर्णकान्तिसमूह द्वारा देदीप्यमान श्रीशचीनन्दन गौरहरि तुम्हारे हृदयमें स्फूर्त्ति लाभ करें। उन्होंने जिस सर्वोत्कृष्ट उज्जवल रसका दान जगत्को चिरकालतक नहीं दिया, उसी स्वभक्ति-सम्पत्तिका दान करनेके लिये वे कलियुगमें अवतीर्ण हुए हैं।

(ख)

श्रीराधायाः प्रणयमहिमा कीदृशो वानयैवा-
स्वाद्यो येनाद्भुतमधुरिमा कीदृशो वा मदीयः।
सौख्यञ्चास्या मदनुभवतः कीदृशं वेति लोभा-
त्तद्भावाढ्यः समजनिशचीगर्भसिन्धौ हरीन्दुः।२।
(श्रीस्वरूप गोस्वामी-कड़चामें)

(१) स्वरूपशक्तिरूपा श्रीमती राधिकाजीके अलौकिक प्रेमकी महिमा कैसी है ?
(२) श्रीमती राधिकाजी जिसका आस्वादन करती हैं, वह मेरी अद्भुत मधुरिमा कैसी है ?
(३) मेरी मधुरिमाकी अनुभूतिसे श्रीमती राधिकाको कौन-सा अनिर्वचनीय सुख मिलता है ?

इन तीन लालसाओंकी पूर्तिकी अभिलाषासे राधाभावद्युतिसंवलिततनु श्रीकृष्णचन्द्र श्रीशचीगर्भ-समुद्रसे श्रीगौराङ्गदेवके रूपमें आविर्भूत हुए।

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतींगना ॥३॥
(विष्णु पुराणे ६।५।७)

१. अणिमादि सिद्धियों-द्वारा स्वतः सिद्ध समस्त ऐश्वर्य, २. संपूर्ण पराक्रम, ३. विशिष्ट यश, ४. संपूर्ण लक्ष्मी, ५. समस्त ज्ञान, ६. सर्वोत्तम पूर्ण वैराग्य—ये छहों 'भग' पद वाच्य हैं, अर्थात् ये सब गुण जिसमें पूर्ण रूपेण विकशित हो वही 'भगवान्' कहा जाता है। श्रीगौराङ्ग महाप्रभुमें भी इन सबका साकल्येन विकाश तत्कालीन महापुरुषोंने देखा।

उपमान प्रमाण

पंचदीर्घः पंचसूक्ष्मः सप्तरक्तः षडुन्नतः।
त्रिह्रस्वपृथुगंभीरो द्वात्रिंशल्लक्षणो महान् ॥४॥
—सामुद्रिके

पंचदीर्घः—पंचसु नासा-भुज-हनु-नेत्र-जानुषु दीर्घः।
पंचसूक्ष्मः—पंचसु त्वक्-केशांगुलिपर्व-दन्त-रोमसु सूक्ष्मः।
सप्तरक्तः—सप्तसु नेत्रान्त-पादतल-करतल-ताल्वधरौष्ठ-जिह्वानखेसु रक्तः।
षडुन्नतः—षट्सु वक्षः-स्कन्ध-नख-नासिका-कटि-मुखेषु उन्नतः।
त्रिह्रस्वः-पृथु-गंभीरः त्रिह्रस्वः त्रिपृथु. त्रिगंभीर इत्यर्थः। तत्तद्यथा।
त्रिषु ग्रीवा-जंघा-मेहनेषु ह्रस्वता।
पुनस्त्रिषु कटि-ललाट-वक्षःसु पृथुता।
पुनस्त्रिषु नाभि-स्वर-सत्त्वेषु गंभीरतेति। एतानि द्वात्रिंशल्लक्षणानि यस्य, सः महान् पुरुष इति।

भावार्थ—१. नासिका, २. भुज युगल, ३. हनु (ठोड़ी), ४. नेत्र, ५. जानु ये पांच अंग जिसके दीर्घ हों; ६. त्वचः, ७. केश, ८. अंगुलिपर्व, ९. दन्त, १०. रोम—ये पांच अंग जिसके सूक्ष्म हों; ११. नेत्रप्रांत, १२. पाद-

तल, १३. करतल, १४. तालु, १५ अधरौष्ठ, १६. जिह्वा, १७. नख—ये सात अंग जिसके स्वाभाविकी लालिमा धारण किये हों, १८ वक्षःस्थल, १९ स्कन्ध, २०. नख, २१. नासिका, २२. कटि, २३. मुख—ये छ अंग जिसके उन्नत हों, और जिसके अंगोंमें क्रमशः २४. ग्रीवा, २५. जंघा, २६. जननेन्द्रियमें ह्रस्वता, २७. कटि, २८. ललाट, २९. वक्षःस्थलमें विशालता, एवं ३०. नाभि, ३१. स्वर, ३२. बुद्धिमें गंभीरता हो वह महापुरुष होता है। ये सब लक्षण श्रीगौराङ्ग महाप्रभुमें भी थे।

संभव प्रमाण

अवतारा ह्यसंख्येया हरेः सत्त्वनिधेर्द्विजाः।
यथाऽविदासिनः कुल्याः सरसः स्युः सहस्रशः ५।
श्रीमद्भागवते १।३।२६

श्रीसूतजी शौनकादि ऋषियोंसे बोले कि—हे ऋषियों! जैसे अपक्षय शून्य अगाध सरोवरसे हजारों छोटी-छोटी नदियाँ निकलती रहती हैं, उसी प्रकार विशुद्ध सत्त्वनिधि श्रीहरिके भी असंख्य अवतार समयानुसार होते रहते हैं। अतः पाखण्डामय पीड़ित भगवद्-धर्म की रक्षाके लिये कलिकी प्रथम सन्ध्यामें श्रीहरिने "श्रीगौरांगदेव" के रूपमें अवतार लिया।

जाह्नवीतीरे नवद्वीपे गोलोकाख्ये धाम्नि गोविन्दो द्विभुजो गौरः* सर्वात्मा महापुरुषो महात्मा महायोगी त्रिगुणातीतः सत्त्वरूपो भक्ति लोके काश्यति ॥६॥

अथर्ववेदीय चैतन्योपनिषदि

भावार्थ यह है कि भगवती भागीरथी के तटपर विद्यमान गोलोक नामसे प्रसिद्ध नवद्वीप धाममें, सर्वान्तर्यामी, महापुरुष, महात्मा, महायोगी, त्रिगुणातीत, शुद्धसत्त्व-स्वरूप, षडैश्वर्यपूर्ण श्रीगोविन्द भगवान् द्विभुज श्रीगौरांग रूपसे अवतीर्ण होकर लोकमें भक्ति का प्रकाश करेंगे। ये सर्वान्तर्यामी प्रभृति गुण श्रीगौरांग महाप्रभुमें स्पष्ट रूपमें अनुभूत हुए हैं।

एको देवः सर्वरूपी महात्मा
गौरो रक्तश्यामलश्वेतरूपः।
चैतन्यात्मा स वै चैतन्यशक्ति-
र्भक्ताकारो भक्तिदो भक्तिवेद्यः ॥७॥

*"गौर" शब्द व्युत्पत्तिर्यथा—श्रीराधाभावित श्रीगोविन्दका "गौ" एवं श्रीगोविन्द-भावित श्रीराधाका "रा" दोनों अक्षर मिलकर बन गया "गौरः"। अथवा श्रीराधाकृष्ण प्रेमाधिक्यसे एकरूप होकर सर्वसाधारणको हरिनामाख्य संगीत प्रदान जिस रूपसे करते हैं उसी का नाम है "गौर" (ग+आ+अ+उ+र=गौर)—उक्तं चाभियुक्तैः—

अकारो भगवान् विष्णुः आकारो राधिकावरा।
उकारः कामरूपोऽयं रेफस्तु दानमुच्यते ॥
गकारो हरिनामाख्यं गीतमित्यर्थवाचकम् ।
प्रेम्णा श्रीराधयाकृष्णः संगीतं हरिनामकम् ॥
यस्मै कस्मै प्रदातीति स गौरो गदितो बुधैः ॥
(परतत्त्वगौरे)

नमो वेदान्तवेद्याय कृष्णाय परमात्मने ।
सर्वचैतन्यरूपाय चैतन्याय नमो नमः ॥८॥
वेदान्तवेद्यं पुरुषं पुराणं
चैतन्यात्मानं विश्वयोनिं महान्तम् ।
तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति
नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥९॥
(अथर्ववेदीय चैतन्योपनिषदि)

तात्पर्य यह है कि—दिव्यातिदिव्य गोलोकमें नित्यलीलापरायण वह एक ही भगवान् सब रूप धारण करते हैं—अतः उदारचेता हैं। वही युग भेदसे क्रमशः श्वेत रूपसे सत्ययुगमें, रक्तवर्णसे त्रेतामें, स्यामल-वर्णसे द्वापरमें, गौररूपसे कलियुगमें अवतीर्ण होते हैं। वही प्रभु चैतन्यशक्ति श्रीचैतन्य महाप्रभु भक्ताकारमें विराजमान हैं। वे ही श्रीगौरहरिरूपसे शुद्ध प्रेमलक्षणा भक्तिके दाता हैं। अतः भक्तिसे जानने योग्य है ॥७॥

निखिल वेदान्तके द्वारा जानने योग्य, श्रीकृष्णस्वरूप, परमात्मा, सर्वचैतन्यरूप श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुके लिए हमारा बारम्बार प्रणाम है ॥८॥

वेदान्तवेद्य, सर्वान्तरात्मा, पुराणपुरुष, विश्वके आदिकारण जो पुरुषोत्तम भगवान् हैं, उनको श्रीचैतन्य महाप्रभु रूपसे जानकर ही जीव मृत्युसे छुटकारा पाता है। उनको पहिचाने बिना अपने इष्टके पास जानेका और कोई भी मार्ग नहीं है, अर्थात् श्रीकृष्ण और श्रीकृष्णचैतन्यदेवमें किंचिद् भी भेद नहीं है ॥९॥

सप्तमे गौरवर्णविष्णोरित्यनेन स्वशक्त्या चैक्यमेत्य प्रान्ते प्रातरवतीर्य सह स्वैः स्वमनुं शिक्षयति। अस्य व्याख्या—सप्तमे सप्तम मन्वन्तरे वैवस्वतमनौ गौरवर्णो भगवान् स्वशक्त्या ह्लादिनीशक्त्या ऐक्यं प्राप्य प्रान्ते कलौ युगे प्रातः प्रथमसन्ध्यायां अवतीर्णो भूत्वा सह स्वैः सपार्षदैः स्वमनुं हरेकृष्णादि जनान् शिक्षयति उपदिशतीतित्यर्थः ॥१०॥
(अथर्ववेदपुरुषबोधिन्याम्)

अर्थात् सप्तम वैवस्वत मन्वन्तरके अट्ठाईसवें कलियुगकी प्रथम सन्ध्यामें अपनी आह्लादिनी शक्तिसे एकता धारणकर अवतीर्ण हो अपने पार्षदोंसे मिलकर "हरे कृष्ण" इत्यादि अपने महामंत्रका उपदेश सर्वसाधारण के लिए करते हैं। सज्जनों! अकारण करुणा-वरुणालय श्रीमन् महाप्रभु चैतन्यदेवके सिवाय यह कार्य और कौनसे अवतारमें संघटित होता है? अतः वेदमें यह श्रीचैतन्यदेवके अवतारका ही वर्णन है।

इतोऽहं कृतसंन्यासोऽवतरिष्यामि सगुणो निर्वेदो निष्कामो भूगीर्वाणस्तीरस्थोऽलक-नन्दायाः कलौ चतुःसहस्राब्दोपरि पंचसहस्रा-भ्यन्तरे गौरवर्णो दीर्घाङ्गः सर्वलक्षणयुक्त ईश्वरप्रार्थितो निजरसास्वादो भक्तरूपो मिश्राख्यो विदितयोगः स्याम् ॥११॥
(अथर्वणस्य तृतीयकाण्डे ब्रह्मविभागानन्तरम्)

भावार्थ यह है कि देवताओं-द्वारा अवतारके लिए प्रार्थना किये जाने पर भगवान् श्रीकृष्ण उत्तर देते हुए बोले कि—चार हजार वर्ष कलिके बीत जानेके बाद एवं पाँच हजार वर्षके मध्यमें ही मैं गंगाजीके किनारे ईश्वर (शंकर) की अर्थात् शंकरावतार श्रीअद्वैताचार्यकी विशिष्ट प्रार्थनासे द्रवीभूत होकर—संन्यासरूप ग्रहण कर इस गोलोकसे सगुण, निर्वेद (वैराग्य), निष्काम ब्राह्मणके रूपमें अवतीर्ण होऊँगा। उस समय मेरा वर्ण गौर होगा। नेत्र भुजा आदि अङ्ग

लंबायमान होंगे। सामुद्रिकोक्त महापुरुषोंके लक्षणोंसे युक्त निजरसास्वादका स्वयं रसास्वादन करनेवाले भक्ताकारमें मिश्रोपाधिसे भूषित ज्ञात होऊंगा। तात्पर्य अधिकारोजन मुझको जान लेंगे।

विश्वंभर विश्वेन मां पाहि स्वाहा ॥१५॥

—अथर्ववेदे

प्रेमका दान कर त्रिभुवनको धारण और पोषण करनेवाले परमात्मा विश्वंभरके श्रीचरणोंमें आत्मसमर्पण करता हूँ। वे मेरी विश्वसे रक्षा करें।

तथाऽहं कृतसंन्यासो भूगीर्वाणोऽवतरिष्ये तीरेऽलकनन्दायाः पुनः पुनरीश्वरप्रार्थितः सपरिवारो निरालम्बो निर्धूतेः कलिकल्मषकवलितजनावलम्बनाय ॥१३॥

(चैतन्यरहस्यधृत सामवेदान्तर्गत ब्रह्मभागे)

पूर्वोक्त प्रकारसे ही सन्यास धारण करनेवाले ब्राह्मणके रूपमें गंगाजीके तीरवर्ती नवद्वीपमें श्रीअद्वैताचार्य-द्वारा बारंबार प्रार्थित होकर किसीके अवलम्बसे रहित अवधूत वेष धारण कर कलिकालके पातकपुंजोंसे ग्रसित जीवोंके अवलम्बनके लिये निज पार्षदों सहित अवतीर्ण होऊंगा।

ज्योतिरिवाऽधूमकः ॥१४॥

(कठोपनिषदि २।१।१३)

धूम रहित अग्निके समान प्रकाशमान प्रभुका रूप है।

हिरण्यश्मश्रुः हिरण्यकेशः आप्रणखात्

सर्व एव सुवर्णः ॥१५॥

(छान्दोग्ये १।६।६)

प्रभुके मुखके लोम सुवर्णके समान हैं और शिरके केश भी सुवर्ण वर्णके ही हैं। और स्वतः प्रभु भी नखसे शिख तक सुवर्ण वर्णमय ही हैं। ये सब लक्षण श्रीचैतन्यदेवमें ही घटते हैं। अतः इस श्रुतिसे उन्होंके अवतारका बोध होता है।

अत्र ब्रह्मपुरं नाम पुण्डरीकं यदुच्यते।
तदेवाष्टदलं पद्मसन्निभं पुरमद्भुतम् ॥
तन्मध्ये दहरं साक्षात् मायापुरमितीर्यते।
तत्र वेश्म भगवतश्चैतन्यस्य परात्मनः ॥
तस्मिन् यस्त्वन्तराकाशो ह्यन्तर्दीपः स उच्यते ॥१ ॥

(छान्दोग्योपनिषदि)

इस शरीरके भीतर 'ब्रह्मपुर' नामक एक पद्म है। वह अद्भुत पुर अष्टदल कमलके आकारवाला है। इस पद्मके मध्यवर्ती 'दहर' नामक स्थान ही मायापुरके नामसे प्रसिद्ध है। वही मायापुर श्रीचैतन्यस्वरूप भगवान् परमात्माका निवास स्थान है और उसके मध्यस्थित आकाश (अन्तराकाश) ही अन्तर्दीप कहलाता है।

यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं
कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम्।
तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय
निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति ॥१७॥

(मुण्डके ३।१।३)

भावार्थ—जिस समय वह जीव ईश्वर का दर्शन करता है तब विद्वान् पुण्य और पापों को छोड़कर प्रकृतिसे बने इस देह और प्रकृति संबन्धसे रहित होकर परम समता (मित्रता)

को प्राप्त होता है। उस परमात्माका वर्ण सुवर्णके समान मनोहर है, वह सर्वान्तर्यामी प्रभु जगत्का कर्ता एवं ब्रह्माजीका भी जनक है।

वेदाहमेतं पुरुषं महान्त-
मादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति
नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥१८॥
(श्वेताश्वतरोपनिषदि ३।८)

भगवत्साक्षात्कार करनेवाला विशिष्ट भक्तराज कहता है कि—मैं उन पुराण-पुरुषोत्तमको उनकी कृपासे अच्छी तरहसे जानता हूँ। वह प्रकृतिमय लोकोंसे परेपरव्योममें रहता है और उसका वर्ण सूर्यसे भी विशिष्ट देदीप्यमान है। उसको जानकर ही जीव मृत्युके फन्देसे छूटता है, और कोई भी दूसरा पथ उनकी प्राप्तिका नहीं है।

महान् प्रभुर्वै पुरुषः सत्त्वस्यैष प्रवर्तकः।
सुनिर्मलामिमां प्राप्तिमीशानो ज्योतिरव्ययः ॥१९॥
(श्वेताश्वतरोपनिषदि ३.१२)

सर्वान्तर्यामी श्रीमन् महाप्रभुजी ही सुनिर्मल अपनी भक्तिरूपी मणिकी प्राप्तिके लिये अपनी अहैतुकी कृपासे प्राणीमात्रको प्रवृत्त करनेवाले हैं।

तमीश्वराणां परमं महेश्वरं
तं देवतानां परमं च दैवतम्।
पतिं पतीनां परमं परस्ताद्
विदाम देवं भुवनेशमीड्यम् ॥२०॥
(श्वेताश्वतरोपनिषदि ६।७)

भावार्थ—भक्तजन कहते हैं कि—हम उस निखिल ब्रह्माण्डनायकदेवको जानते हैं जो शंकर, ब्रह्मा प्रभृति ईश्वरोंका भी महेश्वर अर्थात् नियन्ता है, देवताओंका भी परम पूज्य देवता है, प्रजापतियोंका भी प्रजापति है और प्रकृतिसे पर है।

भक्तप्रियो भक्तिदाता दामोदर इभस्पतिः।
इन्द्रदर्पहरोऽनन्तो नित्यानन्द चिदात्मकः ॥२१॥
चैतन्यरूपश्चैतन्यश्चेतनागुणवर्जितः।
अद्वैताचारनिपुणोऽद्वैतः परमनायकः ॥२२॥
नीलः श्वेतः सितःकृष्णो गौरः पीताम्बर छदः ॥२३॥
शचीसुतजयप्रदः ॥२४॥
नारदपंचरात्रे ज्ञानामृतसारे, रात्र ४, अ.८
बालकृष्णसहस्रनामस्तोत्रे ११६-११७,८४,१५४

इन श्लोकोंमें स्पष्टरूपेण भक्तिप्रिय, भक्तिदाता, दामोदर, चैतन्य, चैतन्यरूप, नित्यानन्द, अद्वैताचारनिपुण, अद्वैत, गौरकृष्ण, शचीसुत आदि नामोंसे सपरिकर श्रीमन् महाप्रभुजीका बोध होता है।

इत्थं नृतिर्यगृषिदेवझषावतारै-
र्लोकान् विभावयसि हन्सि जगत्प्रतीपान्।
धर्मं महापुरुष पासि युगानुवृत्तं
छन्नः कलौ यदभवस्त्रियुगोऽथ स त्वम् ॥२५॥
(श्रीमद्भागवते ७।९।३८)

भक्तवर्य प्रह्लाद श्रीनृसिंहदेवकी स्तुति करते हुए कहते हैं कि—हे पुरुषोत्तम! इस प्रकार आप मनुष्य, पशु, पक्षी, ऋषि, देवता और मत्स्यादि अवतार लेकर लोकोंका पालन तथा विश्वके द्रोहियोंका संहार करते हो। इन अवतारोंके द्वारा आप प्रत्येक युगमें युगानुरूप धर्मकी रक्षा करते हो, परन्तु कलियुगमें तो आप छिपकर गुप्तरूपमें अवतार धारण करते हो। अतः आपका एकनाम

"त्रियुग" भी है। यहाँ पर गुप्तावतारसे श्रीकृष्णचैतन्यावतारका बोध पारिशेष्य न्याय से होता है।

आसन वर्णास्त्रयो ह्यस्य गृह्णतोऽनु युगं तनूः।
शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः ॥२६॥

श्रीमद्भागवते १०।८।१३

श्रीकृष्णचन्द्रके नामकरणके समयमें श्रीनन्द महाराजसे श्रीगर्गाचार्यजी कहते हैं कि—यह तुम्हारा साँवला पुत्र प्रत्येक युगमें श्रीविग्रह धारण करता है। सत्ययुगमें इसका वर्ण श्वेत था, त्रेतामें रक्तवर्ण था, कलिमें पीतवर्ण था और अब द्वापरमें श्यामवर्ण है। अतः इसका नाम कृष्ण होगा। इस श्लोकमें 'पीत' शब्द परिशेष्य प्रमाणसे कलिपावनावतार श्रीगौराङ्ग महाप्रभुजी का ही बोधक है।

इति द्वापर उर्वीश स्तुवन्ति जगदीश्वरम्।
नाना तंत्रविधानेन कलावपि तथा शृणु ॥२७॥
कृष्णवर्णं त्विषाऽकृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्रपार्षदम्।
यज्ञैः संकीर्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः ॥२८॥

श्रीमद्भागवते ११।५।३१—३२

उपर्युक्त प्रकारसे द्वापर युगके लोग जगदीश्वरकी स्तुति करते थे। अब वे ही जगदीश्वर कलियुगमें अवतीर्ण होने पर जिस प्रकार नाना तंत्रोंके विधानोंके द्वारा पूजित होते हैं, उसे बतला रहा हूं, श्रवण करो ॥ ७॥

जो 'कृष्ण'—इन दो वर्णोंका कीर्तन करते हैं अथवा उपदेश करते हैं या 'कृष्ण' इन दोनों वर्णोंके कीर्तन द्वारा कृष्णानुसंधान में सर्वदा तत्पर रहते हैं; जिनके अंग—श्रीनित्यानन्द प्रभु और श्रीअद्वैत प्रभु हैं, जिनके उपाङ्ग—तदाश्रित श्रीवासादि शुद्ध भक्त हैं; जिनका अस्त्र—हरिनाम-शब्द है और जिनके पार्षद—श्रीगदाधर-दामोदर स्वरूप-रामानन्द-सनातन-रूप आदि हैं; जो कान्तिसे अकृष्ण अर्थात पीत (गौर) हैं; उन्हीं बहिर्गौर राधाभावद्युति-सुवलित श्रीमद्-गौरसुन्दरकी कलियुगमें सुमेधागण (पण्डितजन) संकीर्तन-प्रधान यज्ञ द्वारा आराधना करते हैं ॥२८॥

उक्त श्लोककी श्रीजीव गोस्वामि विरचित क्रम सन्दर्भ-टीका—

श्रीकृष्णावतारानन्तर कलियुगावतारं पूर्ववदाह कृष्णेति। त्विषा कान्त्या योऽकृष्णो गौरस्तं सुमेधसो यजन्ति। गौरत्वञ्चास्य "आसन् वर्णास्त्रयोह्यस्य गृह्णतोऽनुयुगं तनूः। शुक्लोरक्तस्तथापीत इदानीं कृष्णतां गतः॥' (भा० १०।८।१३) इत्यत्र परिशेष्य प्रमाणलब्धम्। इदानीमेतदवतारास्पदत्वेनाभिख्याते द्वापरे कृष्णतां गतः इत्युक्ते शुक्ल रक्तयोः सत्य-त्रेता गतत्वेन दर्शितत्वाच्च। पीतस्यातीतत्वं प्राचीन-तदवतारापेक्षया। अत्र श्रीकृष्णस्य परिपूर्णरूपत्वेन वक्ष्यमाणत्वाद् युगावतारत्वं—तस्मिन् सर्वेऽप्यवतारा अन्तर्भूता इति तत्तत्प्रयोजनं तस्मिन्नेकस्मिन्नेव सिध्यतीत्यपेक्षया। तदेवं यद् द्वापरे श्रीकृष्णोऽवतरति, तदैव (तस्मिन्नेव) कलौ श्रीगौरोऽप्यवतरतीति स्वारस्य-लब्धेः श्रीकृष्णाविर्भाव विशेष एवायं श्रीगौर इत्यायाति,—तदव्यभिचारात्। तदेदाविर्भावत्वं तस्य स्वयमेव विशेषणद्वारा व्यनक्ति—कृष्णवर्णं कृष्णेत्येतौ वर्णौ च यत्र, तम्;—यस्मिन्

श्रीकृष्णचैतन्यदेव नाम्नि कृष्णत्वाभिव्यञ्जकं कृष्णेति वर्णयुगलं प्रयुक्तमस्तीत्यर्थः। तृतीये श्रीमदुद्धववाक्ये (भा. ३।३।३) "समाहुताः' इत्यादि पद्ये "श्रियः सवर्णेन" इत्यत्र टीकायां-श्रियो रुक्मिण्याः समानं वर्णद्वयं वाचकं यस्य सः श्रियः सवर्णो रुक्मी इत्यपि दृश्यते; यद्वा, कृष्णं वर्णयति—तादृश – स्वपरमानन्द विलास स्मरणोल्लास-वशतया स्वयं गायति परमकारुणिकतया च सर्वेभ्योऽपि लोकेभ्यस्तमेवोपदिशति यस्तम्; अथवा, स्वयमकृष्णं गौरं त्विषा स्वशोभाविशेषेणैव कृष्णोपदेष्टारञ्च। यद् दर्शनेनैव सर्वेषां कृष्णः स्फुरतीत्यर्थः। किम्वा सर्वलोक द्रष्टारं कृष्णं गौरमपि भक्तविशेष दृष्टौ त्विषा प्रकाशविशेषेण कृष्णवर्णम्। तादृश श्याममुन्दरमेव सन्तमित्यर्थः। तस्मात्त तस्मिन् श्रीकृष्ण रूपस्यैव प्रकाशात्तस्यवाविर्भावविशेषः स इति भावः। तस्य श्रीभगवत्त्वमेव स्पष्टयति साङ्गोपाङ्गास्त्रपार्षदमिति, अङ्गान्येव परममनोहरत्वादुपाङ्गानि भूषणादीनि महाप्रभावत्वात्तान्येवास्त्राणि, सर्वदैवै कान्तवासित्वात्तान्येव पार्षदाः, बहुभिर्महानुभावैरसकृदेव तथा दृष्टोऽसाविति गौड-वरेन्द्र-बङ्गोत्कलादि देशीयानां महाप्रसिद्धेः। यद्वा अत्यन्त प्रेमास्पदत्वात्तत्तुल्या एव पार्षदाः मदद्वैताचार्य–महानुभावचरणप्रभृतयस्तैः सह वर्तमानमिति चार्थान्तरेण व्यक्तम्। तदेवं भूतं कैर्याजन्ति ? यज्ञः पूजा–सम्भारः; (भा० १।१९।२४) न यत्र यज्ञेशमखा महोत्सवाः' इत्युक्तेः। तत्र विशेषेण तमेवाभिधेयं व्यनक्ति-संकीर्तनं बहुभिर्मिलित्वा श्रीकृष्णगानसुखं, तत्प्रधानैस्तथा संकीर्तनप्राधान्यस्य। तदाश्रितेष्वेव दर्शनात् स एवात्राभिधेय इति स्पष्टम्। अतएव सहस्रनाम्नि तदवतारसूचकानि नामानि कथितानि—"सुवर्ण वर्णो हेमाङ्गो वराङ्गश्चन्दनाङ्गदी। संन्यासकृच्छमः शान्त" इत्येत्यानि॥ दर्शितञ्चतत् परमविद्वच्छिरोमणिना श्रीसार्वभौमभट्टाचार्येण "कालान्नष्टं भक्तियोगं निज यः प्रादुष्कर्त्तुं कृष्णचैतन्यनामा। आविर्भूतस्य पादारविन्दे गाढं गाढं लीयतां चित्तभृंग।" इति॥

(क्रमशः)